

समयसार १६९ गाथा। अब, यह बतलाते हैं कि ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव है- भावास्रव का अभाव है, ऐसा तो पहले कहा। वह भावास्रव अर्थात् मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी राग-द्वेष, उसका आस्रव उसे नहीं है। इसलिए सम्यग्दृष्टि को; उस विपरीतदृष्टि का जो आस्रव था, वह आस्रव नहीं है, भावास्रव (नहीं है)। अब यहाँ द्रव्यास्रव कहते हैं।

पुढवीपिंड-समाणा पुव्व-णिबद्धा दु पच्चया तस्स ।

कम्म-सरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स ॥१६९॥

जो सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते हैं ज्ञानिके।

वे पृथ्विपिंड समान हैं, कार्मणशरीर निबद्ध हैं॥१६९॥

टीका : जो पहले.. सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान, पाने से पहले अज्ञान से बँधे हुए मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग.. प्रमाद नहीं डाला। कषाय में प्रमाद समाहित किया। पाँच है न! मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय (और योग)। कषाय में प्रमाद ले लिया। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरूप द्रव्यास्रवभूत प्रत्यय हैं,.. विशिष्टता

क्या है कि जो कर्म पड़े हैं, उन्हें द्रव्यास्रव कहते हैं। जड़.. जड़..! उदय को तो कहते हैं परन्तु यह जड़ आठ कर्म पड़े हैं। पहले अज्ञान से बाँधे हुए, उन्हें यहाँ द्रव्यास्रव (कहते हैं)। जड़ परमाणु पड़े हैं, उन्हें द्रव्यास्रव कहते हैं। पड़े हैं उन्हें।

मुमुक्षु : उदय आवे, तब खिरे और नये हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग वस्तु, वह बाद में। यह तो पूर्व के पड़े हैं, द्रव्यास्रव वह जड़ है। वह तो जड़ है परन्तु उसे द्रव्यास्रव कहा, ऐसा कहना है। अज्ञान से पहले बाँधे हुए जो जड़कर्म, आत्मा के प्रदेश में परद्रव्यरूप से पड़े हैं, उन्हें यहाँ द्रव्यास्रव कहा। द्रव्यास्रव हैं, हैं उन्हें।

वे द्रव्यास्रवभूत प्रत्यय.. कहा न? वे जड़ आस्रव हैं। वे अन्यद्रव्यस्वरूप प्रत्यय.. वे तो पूर्व में बाँधे हुए परमाणु अन्य द्रव्यस्वरूप है। स्वद्रव्यस्वरूप नहीं तथा स्वद्रव्य में जो विपरीत विकार होता है, यह भी वह नहीं। वे तो जड़ परमाणु हैं। अन्यद्रव्यस्वरूप प्रत्यय अचेतन.. वे अन्य जड़ आठ कर्म अन्य द्रव्यस्वरूप आस्रव अचेतन पुद्गलपरिणामवाले हैं.. वे पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा!

ज्ञानी के लिये मिट्टी के ढेले के समान हैं.. धर्मी को, जैसे मिट्टी का ढेला भिन्न है; वैसे वे जड़कर्म तो अज्ञानी को भी उसके आत्मा से भिन्न हैं। यहाँ तो धर्मी (जिसे) आत्मज्ञान हुआ, चैतन्य अखण्ड अभेदस्वरूप पूर्ण परमात्मस्वरूप का सम्यग्दर्शन में—पर्याय में भान हुआ। भान तो पर्याय में होता है न! तो किसका भान? अखण्ड परम पंचम भाव ज्ञायकभाव ध्रुवभाव अखण्ड भाव, एकरूप स्वभावभाव का जहाँ सम्यग्ज्ञान हुआ, उसे ये जड़कर्म पड़े हैं, वे मिट्टी के ढेले समान हैं। अजीव हैं न, अजीव!

(-जैसे मिट्टी आदि पुद्गलस्कन्ध हैं, वैसे ही यह प्रत्यय हैं).. जड़ परमाणु मिट्टी है। जैसे यह मिट्टी बाहर की है, वैसे यह मिट्टी है। आहाहा! वे तो समस्त ही, स्वभाव से ही मात्र कार्मणशरीर के साथ बाँधे हुए हैं.. ऐसा पाठ है न यह तो! 'कम्मसरीरेण बद्धा' कार्मणशरीर के साथ रजकणों का बन्ध है। आत्मा के साथ उन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जीव के साथ नहीं;.. कार्मणशरीर के साथ बाँधे हुए हैं—सम्बन्धयुक्त हैं,.. इतना तो पाठ है। पश्चात् आचार्य ने उसमें से निकाला कि जीव के साथ नहीं;..

जड़ आठ कर्म के परमाणु पड़े हैं, वे अजीव हैं। वे अजीवद्रव्यरूप से हैं, जीवद्रव्यरूप से नहीं।

इसलिए ज्ञानी के.. आहाहा! त्रिकाल ज्ञायकभाव भूतार्थभाव अखण्ड पूर्ण स्वभावभाव का जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, उसे स्वभाव से ही द्रव्यास्रव का अभाव सिद्ध है। वह जड़ है, वह तो जड़ में है, आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो स्वभाव से ही, अभावस्वभाव से ही सिद्ध है।

भावार्थ : ज्ञानी के जो पहले अज्ञानदशा में बँधे हुए मिथ्यात्वादि द्रव्यास्रवभूत प्रत्यय.. उन्हें प्रत्यय कहा। पड़े हैं उन्हें आस्रव कहा। वे तो मिट्टी के ढेले की भाँति पुद्गलमय हैं.. अजीवमय पुद्गल है। इसलिए वे स्वभाव से ही अमूर्तिक चैतन्यस्वरूप जीव से भिन्न हैं। आहाहा! आस्रव की व्याख्या चलती है।

आस्रव दो प्रकार के—द्रव्यास्रव और भावास्रव। भावास्रव मिथ्यात्व और राग-द्वेष। सम्यग्दर्शन होने पर भावास्रव का भी अभाव है। दूसरे अस्थिरता के भाव हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं है और द्रव्यास्रव तो जड़ है, इसलिए ज्ञानी को द्रव्यास्रव और भावास्रव दोनों नहीं हैं। आहाहा! यहाँ सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से (बात) है, हों! सर्वथा आस्रव है ही नहीं, (ऐसा नहीं है)। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी, इन सम्बन्धी के परिणाम उसे नहीं है, इसलिए भावास्रव नहीं है। जड़ आस्रव भी अजीव है। वे तो स्वभाव से ही पुद्गल हैं।

मिट्टी के ढेले की भाँति पुद्गलमय हैं, इसलिए वे स्वभाव से ही अमूर्तिक चैतन्यस्वरूप जीव से भिन्न हैं। उनका बन्ध अथवा सम्बन्ध.. आहाहा! पुद्गलमय.. 'बद्ध' शब्द पड़ा है न! 'कम्मसरीरण बद्धा'.. 'बद्धा' का अर्थ किया है बद्ध अथवा सम्बन्ध, ऐसा। उस कार्मणशरीर के साथ उन्हें बन्ध, सम्बन्ध है; आत्मा के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! चिन्मय जीव के साथ नहीं। भगवान तो चिन्मय, ज्ञानमय है। आहाहा! अकेला ज्ञायकभाव, उसके साथ इन्हें कुछ सम्बन्ध है नहीं। चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति ज्ञायकभाव के साथ इन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है।

इसलिए ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव तो स्वभाव से ही है। (और ज्ञानी के भावास्रव का अभाव होने से, द्रव्यास्रव नवीन कर्मों के आस्रवण के कारण

नहीं होते..) दूसरा कारण रख दिया। एक तो द्रव्यास्रव जड़ हैं, इसलिए आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं है। दूसरा कि, धर्मी को भावास्रव का अभाव होने से, द्रव्यास्रव नवीन कर्मों के आस्रवण के कारण नहीं होते... ज्ञानी को पुराने कर्म नये आस्रव का कारण नहीं होता; इसलिए भी वह भिन्न है, ऐसा (कहना है)। आहाहा!

मुमुक्षु : राग-द्वेष-मोह नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, राग-द्वेष-मोह नहीं। इसलिए द्रव्यास्रव से निमित्त में होकर भावास्रव होना चाहिए, वह तो है नहीं; इसलिए वे द्रव्यास्रव जड़ हैं और उनसे भावास्रव नहीं होता, इसलिए भी वे पर हैं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! इस दृष्टि से भी ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव है।

कलश-११५

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(उपजाति)

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।

ज्ञानी सदा ज्ञान-मयैक-भावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥११५॥

श्लोकार्थ : [भावास्रव-अभावम् प्रपन्नः] भावास्रवों के अभाव को प्राप्त और [द्रव्यास्रवेभ्यः स्वतः एव भिन्नः] द्रव्यास्रवों से तो स्वभाव से ही भिन्न [अयं ज्ञानी] यह ज्ञानी [सदा ज्ञानमय-एक-भावः] जो कि सदा एक ज्ञानमय भाववाला है- [निरास्रवः] निरास्रव ही है, [एकः ज्ञायकः एव] मात्र एक ज्ञायक ही है।

भावार्थ : ज्ञानी के रागद्वेषमोहस्वरूप भावास्रव का अभाव हुआ है और वह द्रव्यास्रव से तो सदा ही स्वयमेव भिन्न ही है क्योंकि द्रव्यास्रव पुद्गलपरिणामस्वरूप है और ज्ञानी चैतन्यस्वरूप है। इस प्रकार ज्ञानी के भावास्रव तथा द्रव्यास्रव का अभाव होने से वह निरास्रव ही है ॥११५॥

 श्लोक - ११५ पर प्रवचन

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:- ११५ (कलश)

भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।

ज्ञानी सदा ज्ञान-मयैक-भावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥११५॥

इसमें से बहुत निकाले कि समकिति को नहीं, वह तो वीतरागी समकिति को नहीं। सातवें गुणस्थान में। इस टीका में भी है न! पंचम गुणस्थान उपरान्त। 'मुख्य' शब्द वापस पड़ा है। गौणता है। आहाहा! मुख्यरूप से पंचम गुणस्थान के ऊपर की बात इसमें है परन्तु गौणरूप से समकिति को भी यहाँ लिया है। आहाहा! क्योंकि मिथ्यात्व, वही आस्रव और संसार है। वह जहाँ गया, इसलिए जो अल्प आस्रव है, वह फिर गिनती में नहीं है। इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं।

भावास्रवों के अभाव को प्राप्त.. दृष्टि की महिमा। ज्ञान और सम्यग्दर्शन त्रिकाली द्रव्य का भान, उसकी महिमा कहते हैं। भावास्रवों के अभाव को प्राप्त.. धर्मी। 'द्रव्यास्रवेभ्यः स्वतः एव भिन्नः' द्रव्यास्रवों से तो स्वभाव से ही भिन्न.. वे तो अजीव हैं। भावास्रव तो अभी इसके परिणाम में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के होते हैं। उनका अभाव है। मिथ्यादृष्टि के परिणाम में राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ—ऐसा मिथ्यात्वभाव और उससे सम्बन्धी अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष होता है। वही वास्तव में तो संसार और आस्रव है। तब वास्तव में भगवान आत्मा पूर्ण है, उसका जहाँ अन्दर भान होने पर वह भावास्रव उसे नहीं होता। आहाहा!

द्रव्यास्रवों से तो स्वभाव से ही भिन्न.. है। वे तो इसके परिणाम में भी नहीं हैं। अज्ञानी के परिणाम में भी द्रव्य-जड़ है, वह तो है नहीं। अज्ञानी के परिणाम में तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का भाव था। वह परिणाम ज्ञानी को नहीं है। इसलिए भावास्रव का अभाव है। द्रव्यास्रव तो जड़ है। आहाहा!

सदा एक ज्ञानमय भाववाला है-निरास्रव ही है,.. 'ही' है, देखा? निरास्रव ही है। 'एकः ज्ञायकः एव' आहाहा! मात्र एक ज्ञायक ही है। जाननेवाला-देखनेवाला ही आत्मा तो है। बस! वह ज्ञायक परिणामे, उसका अर्थ यह। ज्ञायक है—ऐसा जो जाना,

उसके परिणाम ज्ञाता-दृष्टा के हुए। त्रिकाली ज्ञायक है, जो प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं और ज्ञायक कहा न! छठवीं गाथा। वह ज्ञायक है, ऐसा तो परिणाम में भान होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में उस परिणाम में ज्ञायक है, ऐसा ज्ञायक हुआ, उसे ज्ञायक के ही परिणाम रहते हैं। जाननेवाले-देखनेवाले के परिणाम रहते हैं। भावास्रव और द्रव्यास्रव दोनों नहीं हैं। आहाहा!

‘एकः ज्ञायकः एव’ ऐसा शब्द है, देखा? मात्र एक ज्ञायक ही है। ज्ञायक ही। ज्ञायक शब्द से त्रिकाली ज्ञायक दृष्टि में है, परन्तु परिणाम में जानने-देखने का भाव होता है, वह ज्ञायक ही है-जाननेवाला ही है। आहाहा! रागादि होते हैं, उनका वह स्वयं अपनी ज्ञानपर्याय में स्व-परप्रकाशक के अपने सामर्थ्य से जानता-देखता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म!

भावार्थ : रागद्वेषमोहस्वरूप भावास्रव का.. मिथ्यात्व सम्बन्धी। ज्ञानी के अभाव हुआ है.. इसमें से निकाले कि ज्ञानी को कुछ है ही नहीं। आस्रव नहीं, दुःख नहीं। दीपचन्दजी निकालते थे न! ज्ञानी को दुःख नहीं होता, इसलिए आस्रव नहीं होता। आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व सम्बन्धी के राग-द्वेष की बात है। आहाहा! यह तो कहेंगे, अभी ही कहेंगे। एकान्त समझे, ऐसा चलेगा? जैसा स्वरूप है, वैसा (समझना चाहिए)। आहाहा!

ज्ञायक का भान हुआ, उतने सम्बन्धी के उसके भावास्रव नहीं हैं। बाकी दूसरे भावास्रव हैं, वह ज्ञाता का ज्ञेय है। जाननेवाला है, ऐसा यहाँ अभी सिद्ध करना है। पश्चात् वापस सिद्ध करेंगे कि ज्ञानी को यथाख्यातचारित्र नहीं है, तब तक आस्रव है। आहाहा! आस्रव है, उतना दुःख है। आस्रव स्वयं दुःख है। आहाहा!

ज्ञानी चैतन्यस्वरूप है। आहाहा! द्रव्यास्रव पुद्गलपरिणामस्वरूप है.. धर्मी चैतन्यस्वरूप है। आहाहा! इस प्रकार ज्ञानी के भावास्रव तथा द्रव्यास्रव का अभाव होने से वह निरास्रव ही है। यहाँ तो निरास्रव ‘ही’ है, (ऐसा कहा)। कथंचित् निरास्रव है और कथंचित् सास्रव है, ऐसा नहीं लिखा। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी निरास्रव ही है। आहाहा!

वह छह खण्ड के राज्य में हो, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में हो, तथापि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का आस्रव नहीं है। इसलिए वह चैतन्यस्वरूपी भगवान इस अपेक्षा से निरास्रव है। बाकी दूसरे परिणाम हैं, वे आस्रव हैं, यह बाद में कहेंगे। यहाँ से निकल जाता है, वह परिणाम उसे है ही नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा!

गाथा-१७०

कथं ज्ञानी निरास्रव इति चेत् -

चउविह अणोयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।

समए समए जम्हा तेण अबंधो त्ति णाणी दु ॥१७०॥

चतुर्विधा अनेकभेदं बध्नन्ति ज्ञानदर्शनगुणाभ्याम् ।

समये समये यस्मात् तेनाबन्ध इति ज्ञानी तु ॥१७०॥

ज्ञानी हि तावदास्रवभावभावनाभिप्रायाभावान्निरास्रव एव । यत्तु तस्यापि द्रव्य-
प्रत्ययाः प्रतिसमयमनेकप्रकारं पुद्गलकर्म बध्नन्ति, तत्र ज्ञानगुणपरिणाम एव हेतुः ॥१७०॥

अब यह प्रश्न होता है कि ज्ञानी निरास्रव कैसे है? उसके उत्तरस्वरूप गाथा कहते हैं:-

चरविधास्रव समय समय जु, ज्ञानदर्शन गुणहि से।

बहु भेद बाँधे कर्म, इससे ज्ञानि बंधक नाहिं है ॥१७०॥

गाथार्थ : [यस्मात्] क्योंकि [चतुर्विधा:] चार प्रकार के द्रव्यास्रव [ज्ञानदर्शन-
गुणाभ्याम्] ज्ञानदर्शनगुणों के द्वारा [समये समये] समय समय पर [अनेकभेदं] अनेक
प्रकार का कर्म [बध्नन्ति] बाँधते हैं [तेन] इसलिए [ज्ञानी तु] ज्ञानी तो [अबंधः इति]
अबन्ध है।

टीका : पहले, ज्ञानी तो आस्रवभाव की भावना के अभिप्राय के अभाव के
कारण निरास्रव ही है, परन्तु जो उसे भी द्रव्यप्रत्यय प्रति समय अनेक प्रकार का
पुद्गलकर्म बाँधते हैं, वहाँ ज्ञानगुण का परिणाम ही कारण है।

गाथा-१७० पर प्रवचन

अब यह प्रश्न होता है कि ज्ञानी निरास्रव कैसे है? १७० (गाथा)

चउविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।

समए समए जम्हा तेण अबंधो त्ति णाणी दु ॥१७०॥

चरविधास्रव समय समय जु, ज्ञानदर्शन गुणहि से।

बहु भेद बाँधे कर्म, इससे ज्ञानि बंधक नाहिं है ॥१७०॥

टीका : पहले, ज्ञानी तो आस्रवभाव की भावना के अभिप्राय के अभाव के कारण.. यह, यह सिद्धान्त! अज्ञानी को मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष की भावना है। क्योंकि वस्तु शुद्ध चिदानन्द आत्मा अनुभव में आया नहीं, दृष्टि में आया नहीं; इसलिए अज्ञानी को तो मात्र मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के परिणाम, भाव होते हैं। ज्ञानी को तो आस्रवभाव की भावना का अभाव है। देखा? अभिप्राय।

अज्ञानी को तो अभिप्राय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष की भावना है क्योंकि वस्तु चिदानन्द अखण्ड आनन्द की श्रद्धा और ज्ञान हुए नहीं। इसलिए अज्ञानी को भावना मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष की भावना है। ज्ञानी को वह भावना नहीं है। इस प्रकार लिया है।

ज्ञानी तो आस्रवभाव की भावना के अभिप्राय के अभाव के कारण.. देखा? उसका अभिप्राय नहीं है। आहाहा! समकित्ती धर्मी जीव को आस्रवभाव की भावना के अभिप्राय के अभाव के कारण। अभिप्राय में राग और मिथ्यात्व की भावना नहीं है। अभिप्राय तो सम्यग्दर्शन और शान्ति का अभिप्राय है। आहाहा! पूर्ण आनन्द का जो अभिप्राय है, उस आनन्द की भावनावाला है। वह आस्रव की भावनावाला नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। ज्ञानी तो आस्रवभाव की भावना-उसका जो अभिप्राय, उसके अभाव के कारण निरास्रव ही है,.. यह अपेक्षा लेना। अभिप्राय में उसकी भावना नहीं है, इसलिए निरास्रव है। ऐसा तो स्पष्ट किया है। अत्यन्त निरास्रव ही है, ऐसा नहीं है। अभिप्राय की बात है। आहाहा! और उसमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का माहात्म्य वर्णन किया है। यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष की भावना वहाँ कहाँ है? अरे! दया, दान के

परिणाम की भावना उसे नहीं कि यह होवे तो ठीक। आहाहा! दया, दान, व्रत (के) परिणाम आवें, परन्तु अभिप्राय में उन्हें रखनेयोग्य है और करनेयोग्य है, ऐसी भावना नहीं है। आहाहा! कितना स्पष्ट किया है।

परन्तु जो उसे भी द्रव्यप्रत्यय.. उसे भी जो द्रव्यास्रव प्रति समय अनेक प्रकार का पुद्गलकर्म बाँधते हैं,.. जो पुराने कर्म हैं, वे उदय में आवें और नया कर्म बाँधते हैं। वहाँ ज्ञानगुण का परिणमन ही कारण है। कहते हैं कि वह तो पर का कारण है। यह ज्ञानगुण का परिणमन तो भिन्न है। ज्ञानगुण का परिणमन बन्ध का कारण नहीं। आहाहा! ज्ञान और समकित का भाव, वह बन्ध का कारण नहीं है। उसे पूर्व का कर्म बँधा हुआ उदय में आकर बन्ध करता है, परन्तु वह ज्ञान और श्रद्धा का भाव वह नहीं है। वह अस्थिरता का भाव है, इसलिए ज्ञान का परिणमन वह बन्ध का कारण नहीं है परन्तु जो उदय आकर नये राग-द्वेष हुए और बाँधते हैं, वह पर में जाता है। ज्ञेय में (जाता है)। आहाहा!

पुद्गलकर्म बाँधते हैं, वहाँ ज्ञानगुण का परिणमन ही कारण है। अर्थात्? हीन दशा है, हीन दशा है, इस कारण वहाँ राग-द्वेष होते हैं और (कर्म) बाँधते हैं। ऐसा यह कहेंगे। यह अब कहते हैं, देखो!

गाथा-१७१

कथं ज्ञानगुणपरिणामो बन्धहेतुरिति चेत् -

जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि ।

अण्णत्तं णाण-गुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥१७१॥

यस्मात्तु जघन्यात् ज्ञानगुणात् पुनरपि परिणमते ।

अन्यत्वं ज्ञान-गुणः तेन तु स बन्धको भणितः ॥१७१॥

ज्ञानगुणस्य हि यावज्जघन्यो भावः तावत् तस्यान्तर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयास्ति परिणामः । स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यम्भाविराग-सद्भावात् बन्धहेतुरेव स्यात् ॥१७१॥

अब यह प्रश्न होता है कि ज्ञानगुण का परिणामन बन्ध का कारण कैसे हैं? उसके उत्तर की गाथा कहते हैं:-

जो ज्ञानगुण की जघनता में, वर्तता गुण ज्ञान का।

फिर फिर प्रणमता अन्यरूप जु, उसहि से बंधक कहा ॥१७१॥

गाथार्थ : [यस्मात् तु] क्योंकि [ज्ञानगुणः] ज्ञानगुण, [जघन्यात् ज्ञानगुणात्] जघन्य ज्ञानगुण के कारण [पुनरपि] फिर से भी [अन्यत्वं] अन्यरूप से [परिणमते] परिणामन करता है, [तेन तु] इसलिए [सः] वह (ज्ञानगुण) [बंधकः] कर्मों का बन्धक [भणितः] कहा गया है।

टीका : जब तक ज्ञानगुण का जघन्य भाव है (-क्षायोपशमिक भाव है) तब तक वह (ज्ञानगुण) अन्तर्मुहूर्त में विपरिणाम को प्राप्त होता है, इसलिए पुनः पुनः उसका अन्यरूप परिणामन होता है। वह (ज्ञानगुण का जघन्य भाव से परिणामन),

यथाख्यातचारित्र-अवस्था के नीचे अवश्यम्भावी राग का सद्भाव होने से, बन्ध का कारण ही है।

भावार्थ : क्षायोपशमिकज्ञान एक ज्ञेय पर अन्तर्मुहूर्त ही ठहरता है, फिर वह अवश्य ही अन्य ज्ञेय को अवलम्बता है; स्वरूप में भी वह अन्तर्मुहूर्त ही टिक सकता है, फिर वह विपरिणाम को प्राप्त होता है। इसलिए ऐसा अनुमान भी हो सकता है कि सम्यक्दृष्टि आत्मा सविकल्पदशा में हो या निर्विकल्प अनुभवदशा में हो-उसे यथाख्यातचारित्र-अवस्था होने से पूर्व अवश्य ही रागभाव का सद्भाव होता है; और राग होने से बन्ध भी होता है। इसलिए ज्ञानगुण के जघन्यभाव को बन्ध का हेतु कहा गया है।

गाथा-१७१ पर प्रवचन

अब यह प्रश्न होता है कि ज्ञानगुण का परिणमन बन्ध का कारण कैसे हैं? ज्ञानगुण का परिणमन बन्ध कारण? एक ओर तुम कहो कि ज्ञान और श्रद्धा का अभिप्राय नहीं, इसलिए बन्ध नहीं। और कहो कि बन्ध का कारण ज्ञान का परिणमन है। आहाहा! यह ज्ञानगुण का परिणमन बन्ध का कारण कैसे हैं? उसके उत्तर की गाथा कहते हैं:- १७१ (गाथा)

जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि ।

अण्णत्तं णाण-गुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥१७१॥

जो ज्ञानगुण की जघनता में, वर्तता गुण ज्ञान का।

फिर फिर प्रणमता अन्यरूप जु, उसहि से बंधक कहा ॥१७१॥

टीका : जब तक ज्ञानगुण का जघन्य भाव है.. देखा? जब तक यथाख्यात-चारित्र नहीं है और जब तक पूर्ण स्थिरता का परिणाम नहीं हैं, तब तक ज्ञानगुण का वर्तमान जघन्य भाव परिणमन है। थोड़ा भाव परिणामा है, ऐसा। (-क्षायोपशमिक भाव है) तब तक वह (ज्ञानगुण) अन्तर्मुहूर्त में विपरिणाम को प्राप्त होता है.. आहाहा! इसलिए पुनः पुनः उसका अन्यरूप परिणमन होता है। ज्ञान अन्तर्मुहूर्त ही स्थिर रह सकता है। फिर वापस उसे राग हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा! पहले इनकार किया।

वह अभिप्राय की अपेक्षा से इनकार किया था। चारित्र के दोष की अपेक्षा से है। उसे है ही नहीं, ऐसा कर डाले। सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए कुछ जरा भी आस्रव नहीं, जरा भी दुःख नहीं... आहाहा! तो पूर्ण सुख और पूर्ण (शान्ति) होना चाहिए। आहाहा! अटकने के साधन बहुत, छूटने का एक। आहाहा! भगवान् परिपूर्ण स्वरूप एक का ही आश्रय छूटने का कारण है, बाकी अटकने के साधन अनन्त में से कुछ-कुछ अटक कर अनादि काल से मिथ्यात्व में पड़कर बन्धन करता है।

यहाँ क्या कहा? (ज्ञानगुण का जघन्य..) अर्थात् क्षयोपशमभाव है, क्षायिकभाव नहीं। तब तक वह (ज्ञानगुण) अन्तर्मुहूर्त में विपरिणाम.. को पाता है। विकार का परिणमन हो जाता है। धर्मी को भी अन्तर में स्थिरता निर्विकल्प होता है, तब तक भले उसे बुद्धिपूर्वक (विकल्प) नहीं है परन्तु जहाँ बाहर आया तो उसके परिणाम विकल्प और राग में आते हैं। धर्मी को भी राग होता है। आहाहा! चौथे, पाँचवें (में) अशुभराग भी होता है। पश्चात् छठवें में शुभ (राग होता है)।

अन्तर्मुहूर्त में विपरिणाम को प्राप्त होता है.. जो स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा है, वह अन्तर्मुहूर्त में अन्दर में स्थिर रह सकता है। पश्चात् गुलाँट खाकर अन्दर राग-द्वेष के परिणाम होते हैं। एक ओर ज्ञानी को निरास्रव कहा तथा एक ओर ज्ञानी को अभी राग-द्वेष होते हैं, ऐसा कहा। क्या अपेक्षा है, जानना चाहिए। अन्तर्मुहूर्त में विपरिणाम को प्राप्त होता है, इसलिए पुनः पुनः उसका अन्यरूप.. अर्थात् विकाररूप से परिणमन होता है। ज्ञानी को भी स्वरूप पूर्ण जब तक नहीं प्राप्त हुआ, तब तक निचली दशा में अन्यरूप से अर्थात् विकाररूप से परिणमन होता है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में आर्तध्यान और रौद्रध्यान भी है। छठवें में रौद्रध्यान नहीं है। रौद्रध्यान है, वह ऐसे ध्यान छूटकर, लब्धरूप उपयोग रहता है परन्तु उपयोग जहाँ आर्त और रौद्रध्यान में जाता है, तब अन्य परिणाम-विकार हो जाता है। उसकी जाति के परिणाम जो ज्ञाता-दृष्टा के (वे) छूटकर उनसे विपरीत विकार परिणाम ज्ञानी को भी आर्त और रौद्रध्यान होता है।

मुमुक्षु : हेयबुद्धि से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेयबुद्धि से होता है। है तो हेयबुद्धि, परन्तु है। यहाँ तो है, ऐसा सिद्ध करना है। पहले इनकार किया था कि उसे नहीं है, वह तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी

की अपेक्षा से (कहा था) परन्तु उसकी अस्थिरता के परिणाम होते हैं, इसलिए उसे इतना आस्रव है। आहाहा!

वह (ज्ञानगुण का जघन्य भाव से परिणमन),... अर्थात् ज्ञान अर्थात् आत्मा। उसका स्वभाव जघन्य अर्थात् निचली श्रेणी का परिणमन है। उत्कृष्ट यथाख्यात चाहिए, वैसा परिणमन नहीं है अथवा क्षायिकभाव का परिणमन नहीं है। भले समकित क्षायिक हो, परन्तु क्षायिकभाव जो चारित्र का है, वह परिणमन नहीं है। आहाहा! क्षायिक समकिति भी अस्थिरता के परिणाम को प्राप्त होता है। आहाहा!

चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकित है। श्रेणिक राजा इत्यादि, तो भी अस्थिरता के परिणाम में वे आ जाते हैं। आहाहा! मरते हुए ज़हर चूसा। श्रेणिक राजा! क्षायिक समकित! समय-समय में तीर्थकरगोत्र बाँधते हैं, तथापि वह कुणिक मारने आया... वह आया था बचाने को, परन्तु ये मानो मुझे मारने आया। (ऐसा लगा इसलिए) हीरा चूस लिया, ज़हर खाया। अपघात किया! वे परिणाम विपरीत (हैं अवश्य परन्तु) समकित से विपरीत नहीं हैं किन्तु अस्थिरता में विपरीत हैं। आहाहा! कहो, श्रेणिक राजा आगामी चौबीसी में तीर्थकर होनेवाले हैं। हजारों रानियाँ! कैद में डाला। उन्हें छुड़ाने जा रहा (था वहाँ) स्वयं ने ज़हर खाकर अपघात किया। उस मिथ्या (विकारी) परिणाम से समकित को दोष नहीं है। उस परिणाम से समकित को दोष नहीं है, क्षायिक समकित है परन्तु उसे चारित्र के दोष का परिणमन होता है। इतना तो उसे आस्रव भी है।

यथाख्यातचारित्र-अवस्था के नीचे.. देखा! स्थिरता की अपेक्षा से यहाँ बात है न! समकित और दर्शन-ज्ञान की अपेक्षा से तो बात हो गयी। यहाँ तो अब स्थिरता की अपेक्षा से ज्ञानी को जघन्य स्थिरता है। है? ज्ञानगुण का जघन्यभाव से परिणमन की स्थिरता है। यथाख्यातचारित्र-अवस्था के नीचे.. पूर्ण यथाख्यातचारित्र... आहाहा! उसके नीचे अवश्यम्भावी.. अवश्य, राग का सद्भाव होने से,.. लो! बन्ध का कारण ही है। यहाँ भी 'ही' रखा है। आहा! अस्थिरता की अपेक्षा से बन्ध ही है। दृष्टि और ज्ञान की अपेक्षा से उसे बन्ध नहीं है। उस प्रकार के विपरीत परिणाम नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! किस अपेक्षा से वहाँ कहा, इसकी खबर (होना चाहिए)।

यथाख्यातचारित्र-अवस्था के नीचे.. एकदम वीतराग अवस्था। यथाख्यात

अर्थात् जैसी इसकी शान्ति और चारित्र की स्थिरता का स्वभाव है, वैसा ही स्थिरता का स्वभाव पूर्ण प्रगट न हो, तब तक अवश्य राग का सद्भाव होने से, बन्ध का कारण ही है। दसवें गुणस्थान तक बन्ध का कारण है। यथाख्यात्चारित्र पहले कहा न! आहाहा! ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान पहले भी बन्ध का कारण है। एक ओर चौथे गुणस्थान से (आस्रव नहीं ऐसा कहा)। किस अपेक्षा से कहा? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्यक् और स्थिरता - स्वरूपाचरण हुई, उसके कारण मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का जो बन्ध था, आस्रव (था), वह नहीं है। अवश्य नहीं, ऐसा वापस। वह उसे अवश्य नहीं है। इस अपेक्षा से निरास्रवी है परन्तु स्थिरता की अपेक्षा से पूर्ण स्थिरता नहीं है, स्थिरता जघन्य है, इस कारण से उसे राग-द्वेष के परिणाम होते हैं। आहाहा! (राग का) सद्भाव बन्ध का कारण ही है। आहाहा!

भावार्थ : क्षायोपशमिकज्ञान एक ज्ञेय पर अन्तर्मुहूर्त ही ठहरता है,.. अर्थात् क्या कहते हैं? अन्तरध्यान में अन्दर ज्ञायकस्वरूप को पकड़कर स्थिर रहता है, वह अन्तर्मुहूर्त ही रह सकता है। चिदानन्द अखण्ड ज्ञायकभाव के ध्यान में रहे तो वह अन्तर्मुहूर्त रह सकता है, अधिक नहीं रह सकता। वह ज्ञान एक ज्ञेय पर अन्तर्मुहूर्त ही ठहरता है,.. पश्चात् अवश्य अन्य ज्ञेय को अवलम्बता है;.. स्वज्ञेय को छोड़कर परज्ञेय को अवलम्बता है। आहाहा!

स्वरूप में भी वह अन्तर्मुहूर्त ही टिक सकता है,.. स्वरूप में अधिक नहीं रह सकता। आहाहा! अन्तर में ध्यान में समकित, ज्ञान होता है, वह ध्यान में होता है परन्तु वह ध्यान अन्तर्मुहूर्त ही रहता है। पश्चात् भी ध्यान होता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही रहता है। अन्तर्मुहूर्त के तो बहुत असंख्य प्रकार हैं। फिर वह विपरिणाम को प्राप्त होता है। समकिती भी, ज्ञानी भी अन्तर्मुहूर्त स्वरूप में-स्वज्ञेय में रमे, पश्चात् उसे परज्ञेय का अवलम्बन होता है, (तब) वह अवश्य राग को प्राप्त होता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा न? परदव्वादो दुग्गई—स्वद्रव्य का अवलम्बन छूटकर जितना परद्रव्य का अवलम्बन हो, फिर तीर्थकर और तीन लोक के नाथ का अवलम्बन, राग और बन्ध का कारण है। आहाहा!

स्वद्रव्य में तो अन्तर्मुहूर्त ही ध्यान में रह सकता है। पश्चात् उसे परद्रव्य का अवलम्बन, परज्ञेय का (अवलम्बन) आता है। आहाहा! विपरिणाम को प्राप्त होता

है। आहाहा! अर्थात्? विकार परिणाम जो स्वभाव से विरुद्ध है, उसे वह प्राप्त होता है। आहाहा! अशुभभाव भी प्राप्त होता है। ज्ञानी अशुभभाव... आहाहा! उसे प्राप्त होता है। बाहुबली और भरत दोनों सम्यक्त्वी। एक-दूसरे को चक्र मारा। वह अस्थिरता का राग है, चारित्र का दोष है। आहाहा! सम्यक्त्व की अपेक्षा से अबन्ध है परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से अभी बन्ध है। स्थिरता पूरी नहीं हुई। आहाहा! इसमें एकान्त खींचे (कि) समकित्ती को बन्ध ही नहीं, उसे दुःख ही नहीं। (राग) बाकी है। दसवें गुणस्थान में छह कर्म बाँधे, दसवें में! इसलिए यथाख्यातचारित्र से पहले कहा न! दसवें गुणस्थान में भी एक मोहनीय और आयुष्य के बिना छह कर्म को बाँधता है। राग है न, राग! आहाहा!

एक ओर सम्यग्दर्शन होने पर उस सम्बन्धी के विपरीत परिणाम नहीं, इसलिए उसे उसका बन्धन-आस्रव नहीं। परन्तु अस्थिरता की अपेक्षा से जघन्य स्थिरता है, पूर्ण स्थिरता नहीं, इसलिए वह विपरिणाम-विकार में आ जाता है। विकार के कारण बन्धन भी है। आहाहा!

इसलिए ऐसा अनुमान भी हो सकता है.. इसलिए ऐसा अनुमान भी हो सकता है। कि सम्यक्दृष्टि आत्मा सविकल्पदशा में हो या निर्विकल्प अनुभवदशा में हो.. आहाहा! देखा? चाहे तो विकल्प आवे, राग आवे, उसमें हो या चाहे तो निर्विकल्पदशा ध्यान में हो। आहाहा! देखा? भले निर्विकल्पदशा-ध्यान में हो, चौथे-पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में हो) यथाख्यातचारित्र-अवस्था होने से पूर्व.. आहाहा! पूर्ण स्थिरता जमने से पहले। वीतरागता! पर्याय में स्थिरता की वीतरागता हुए बिना... आहाहा! दृष्टि है, वह वीतराग है, ज्ञान से वीतराग है परन्तु स्थिरता में वीतरागता नहीं है, ऐसा कहते हैं। वापस ऐसा यहाँ ले जाए कि दृष्टि से वह रागी है, ऐसा नहीं है। दृष्टि तो सम्यक् वीतराग है। ज्ञान भी प्रगट हुआ, वह वीतरागी ज्ञान है। आहाहा! स्वरूप की स्थिरता प्रगटी है, वह भी वीतरागी है, परन्तु जघन्य स्थिरता है। चारित्र की स्थिरता यथाख्यात् (होनी चाहिए वह नहीं है)। उसके अभाव के कारण अनुमान हो सकता है कि सम्यग्दृष्टि आत्मा निर्विकल्प ध्यान में हो तो भी कर्म बन्धन करता है। आहाहा! समझ में आया?

निर्विकल्प ध्यान में हो, ज्ञाता-ज्ञेय (का भेद) भूल जाए, अकेला ध्येय रहे। छहढाला में आता है न! ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय भूल जाए। अकेला ज्ञान का अनुभव चौथे, पाँचवें

आदि (में रहे) तो भी उस काल में भी उसे अस्थिरता उठी है, इसलिए उस काल में भी आस्रव है, बन्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : उस काल में निर्जरा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्जरा है, परन्तु साथ में बन्ध है न! निर्जरा थोड़ी है। कहा न, संवर और निर्जरा थोड़ी है। स्थिरता थोड़ी है, इसका अर्थ क्या ? उसे अस्थिरता है और स्थिरता कम है। स्थिरता कम है अर्थात् उतना संवर और निर्जरा का भाव अभी नहीं है। जो उग्र संवर चाहिए, वह भाव नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो समकिती निर्विकल्प ध्यान में हो, तब भी उसे कर्मबन्धन तो है, क्योंकि स्थिरता पूर्ण कहाँ है ? स्वरूप का आचरण आदि स्थिरता भले वहाँ आयी, परन्तु स्थिरता पूर्ण नहीं है, इसलिए उसे बन्धन है। ध्यान में बैठे हुए जीव को भी, चौथे-पाँचवेंवाले को बन्धन है, अस्थिरता का बन्धन है। आहाहा!

देखो! क्या कहा ? **सम्यक्दृष्टि आत्मा सविकल्पदशा में हो..** चाहे तो राग के उपयोग में बाह्य हो या **निर्विकल्प..** दशा में हो। आत्मा के अन्दर ध्यान में हो। आहाहा!
यथाख्यातचारित्र-अवस्था होने से पूर्व अवश्य ही रागभाव का सद्भाव होता है;.. निर्विकल्प ध्यान चौथे-पाँचवें में होता है। बाकी सातवें में होता है। फिर छठवें में राग आया या चौथे-पाँचवें में भी राग आया, वह निश्चय-अवश्य बन्ध का कारण है। वह आस्रव है। आहाहा! दर्शन-ज्ञान हुआ, तो भी अभी ज्ञान भी पूर्ण कहाँ है ? केवलज्ञान (कहाँ है) ? भले क्षायिक समकित हुआ, परन्तु ज्ञान पूर्ण नहीं है, दर्शन पूर्ण हो गया है और स्थिरता पूर्ण नहीं; स्थिरता कम है। उतनी अस्थिरता निर्विकल्प ध्यानकाल में भी... आहाहा! चौथे गुणस्थान में निर्विकल्प ध्यान में भी अभी तीन कषाय के भाव का राग है। निर्विकल्प ध्यान के समय भी! आहाहा! ऐसा बहुत लम्बा। जहाँ आत्मा ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान ऐसे भेद को भूलकर चौथे-पाँचवें में ध्यान में है, उसे भी स्थिरता कम है, इसलिए उसे आस्रव और बन्ध है। आहाहा! है ?

निर्विकल्प और सविकल्पदशा में भी **यथाख्यातचारित्र-अवस्था होने से पूर्व अवश्य (जरूर) ही रागभाव का सद्भाव होता है;..** चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में निर्विकल्प ध्यान है, आता है। उस समय तो ध्यान-ध्याता-ध्येय के तीन भेद भी भूल

जाता है, तो भी निचली श्रेणी में उस काल में भी तीन कषाय का राग है। आहाहा! दो बातें ली हैं। निर्विकल्प, सविकल्प दो बातें ली हैं। अकेले सविकल्प में रागादि है, ऐसा नहीं। आहाहा! चौथे-पाँचवें और छठे में, निर्विकल्प छठे में नहीं है, सातवें में हो जाता है, यहाँ चौथे-पाँचवें में निर्विकल्पता आ जाती है, तथापि उस काल में भी चौथे में तीन कषाय का भाव है, पाँचवें में दो कषाय का भाव है। आहाहा! अरे! सातवें में भी ध्यान में आ जाता है तो भी एक कषाय का भाव अभी है। है न? अस्थिरता, यथाख्यात स्थिरता के पहले की बात ली है न? पूर्ण यथाख्यात नहीं है, तब तक सातवें में भी निर्विकल्प ध्यान में होता है, उसे भी राग है, बन्धन भी है। आहाहा!

एक ओर समकृति को आस्रव और बन्ध नहीं है; एक ओर सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प ध्यान में भी राग और बन्धन है। किस अपेक्षा से कहा? आहाहा! आठवें में भी निर्विकल्प ध्यान में अभी राग है। भले निर्विकल्प है, परन्तु राग है, उतना बन्धन है। नववें में भी उतना है, दसवें में भी है। आहाहा! अरे! गुणस्थान की भी खबर नहीं होता कि कौन सा गुणस्थान (कब होता है)? किस गुणस्थान में कितना आस्रव और किस गुणस्थान में कितना बन्धन नहीं, इसे यह समझना कठिन पड़ता है।

सविकल्प दशा में हो या निर्विकल्प.. दशा में हो, राग होता है, उसे धर्मी ज्ञान का ज्ञेयरूप से जानता है, तो भी **अवश्य ही रागभाव का सद्भाव होता है;**.. आहाहा! चौथे-पाँचवें, सातवें, आठवें, नववें में निर्विकल्प ध्यान है, तथापि अभी उसके गुणस्थान प्रमाण में जो राग गया, उतना नहीं, परन्तु अभी बाकी है, इतना यथाख्यात के पहले राग है। आहाहा! **राग होने से बन्ध भी होता है।** दसवें में बन्ध होता है। दसवें गुणस्थान में! इसलिए यथाख्यात् लिया है न! यथाख्यात् ग्यारहवें और बारहवें में होता है।

इसलिए ज्ञानगुण के जघन्यभाव को बन्ध का हेतु कहा गया है। क्या कहा? **इसलिए ज्ञानगुण के जघन्यभाव..** (अर्थात्) अस्थिरता। आत्मभाव में स्थिरता थोड़ी है, ऐसा। उस ज्ञानगुण के जघन्यभाव को बन्ध का हेतु कहा गया है। स्थिरता की जघन्य स्थिति / कम है, इस अपेक्षा से। जो गुण है, निर्मल है, वह तो बन्ध का कारण नहीं है। जितनी अन्दर अस्थिरता और राग-द्वेष है, ऐसा ज्ञानगुण के जघन्य भाव को **बन्ध का हेतु कहा गया है।** आहाहा!

गाथा-१७२

एवं सति कथं ज्ञानी निरास्रव इति चेत् -

दंसण-णाण-चरित्तं जं परिणमदे जहण्ण-भावेण ।

णाणी तेण दु बज्झदि पोग्गल-कम्मेण विविहेण ॥१७२॥

दर्शन-ज्ञान-चारित्रं यत्परिणमते जघन्य-भावेन ।

ज्ञानी तेन तु बध्यते पुद्गल-कर्मणा विविधेन ॥१७२॥

यो हि ज्ञानी स बुद्धिपूर्वकरागद्वेषमोहरूपास्रवभावाभावात् निरास्रव एव, किन्तु सोऽपि यावज्ज्ञानं सर्वोत्कृष्टभावेन द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वाऽशक्तः सन् जघन्यभावेनैव ज्ञानं पश्यति जानात्यनुचरति च तावत्तस्यापि जघन्यभावान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमानाबुद्धिपूर्वक-कलंकविपाक-सद्भावात् पुद्गलकर्मबन्धः स्यात् ।

अतस्तावज्ज्ञानं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च यावज्ज्ञानस्य यावान् पूर्णो भावस्तावान् दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च सम्यग्भवति । ततः साक्षात् ज्ञानीभूतः सर्वथा निरास्रव एव स्यात् ॥१७२॥

अब पुनः प्रश्न होता है कि-यदि ऐसा है (अर्थात् ज्ञानगुण का जघन्यभाव बन्ध का कारण है) तो फिर ज्ञानी निरास्रव कैसे है? उसके उत्तरस्वरूप गाथा कहते हैं:-

चारित्र, दर्शन, ज्ञान तीन, जघन्य भाव जु परिणमे।

उससे हि ज्ञानी विविध पुद्गलकर्म बंधात है ॥१७२॥

गाथार्थ : [यत्] क्योंकि [दर्शनज्ञानचारित्रं] दर्शन-ज्ञान-चारित्र [जघन्यभावेन] जघन्यभाव से [परिणमते] परिणमन करते हैं [तेन तु] इसलिए [ज्ञानी] ज्ञानी [विविधेन] अनेक प्रकार के [पुद्गलकर्मणा] पुद्गलकर्म से [बध्यते] बंधता है।

टीका : जो वास्तव में ज्ञानी है, उसके बुद्धिपूर्वक (इच्छापूर्वक) रागद्वेषमोहरूपी आस्रवभावों का अभाव है, इसलिए वह निरास्रव ही है परन्तु वहाँ इतना विशेष है कि— वह ज्ञानी जब तक ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट भाव से देखने, जानने और आचरण करने में अशक्त वर्तता हुआ जघन्यभाव से ही ज्ञान को देखता, जानता और आचरण करता है, तब तक उसे भी, जघन्यभाव की अन्यथा अनुपपत्ति के द्वारा (जघन्यभाव अन्य प्रकार से नहीं बनता इसलिए) जिसका अनुमान हो सकता है, ऐसे अबुद्धिपूर्वक कर्म कलंक के विपाक का सद्भाव होने से, पुद्गलकर्म का बन्ध होता है। इसलिए तब तक ज्ञान को देखना, जानना और आचरण करना चाहिए, जब तक ज्ञान का जितना पूर्ण भाव है, उतना देखने, जानने और आचरण में भलीभाँति आ जाये। तब से लेकर साक्षात् ज्ञानी होता हुआ (वह आत्मा) सर्वथा निरास्रव ही होता है।

भावार्थ : ज्ञानी के बुद्धिपूर्वक (अज्ञानमय) रागद्वेषमोह का अभाव होने से वह निरास्रव ही है परन्तु जब तक क्षायोपशमिक ज्ञान है, तब तक वह ज्ञानी ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट भाव से न तो देख सकता है, न जान सकता है और न आचरण कर सकता है; किन्तु जघन्यभाव से देख सकता है, जान सकता है और आचरण कर सकता है; इससे यह ज्ञात होता है कि उस ज्ञानी के अभी अबुद्धिपूर्वक कर्मकलंक का विपाक (चारित्रमोहसम्बन्धी रागद्वेष) विद्यमान है और इससे उसके बन्ध भी होता है। इसलिए उसे यह उपदेश है कि—जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक निरन्तर ज्ञान का ही ध्यान करना चाहिए, ज्ञान को ही देखना चाहिए, ज्ञान को ही जानना चाहिए और ज्ञान का ही आचरण करना चाहिए। इसी मार्ग से दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन बढ़ता जाता है और ऐसा करते-करते केवलज्ञान प्रगट होता है। जब केवलज्ञान प्रगटता है, तब से आत्मा साक्षात् ज्ञानी है और सर्व प्रकार से निरास्रव है।

जब तक क्षायोपशमिक ज्ञान है, तब तक अबुद्धिपूर्वक (चारित्रमोह का) राग होने पर भी, बुद्धिपूर्वक राग के अभाव की अपेक्षा से ज्ञानी के निरास्रवत्व कहा है और अबुद्धिपूर्वक राग का अभाव होने पर तथा केवलज्ञान प्रगट होने पर सर्वथा निरास्रवत्व कहा है। यह, विवक्षा की विचित्रता है। अपेक्षा से समझने पर यह सर्व कथन यथार्थ है।

गाथा-१७२ पर प्रवचन

अब पुनः प्रश्न होता है कि-यदि ऐसा है (अर्थात् ज्ञानगुण का जघन्यभाव बन्ध का कारण है) तो फिर ज्ञानी निरास्रव कैसे है? उसके उत्तरस्वरूप गाथा कहते हैं:- एक ओर तुम निरास्रव कहो तथा एक ओर ज्ञान की स्थिरता की जघन्यता में आस्रव कहो, (वह किस प्रकार से?) उसका उत्तर।

दंसण-णाण-चरित्तं जं परिणमदे जहण्ण-भावेण ।

णाणी तेण दु बज्झदि पोग्गल-कम्मेण विविहेण ॥१७२॥

चारित्र, दर्शन, ज्ञान तीन, जघन्य भाव जु परिणमे।

उससे हि ज्ञानी विविध पुद्गलकर्म बंधात है॥१७२॥

आहाहा! तीनों को लिया है। टीका : जो वास्तव में ज्ञानी है, उसके बुद्धिपूर्वक (इच्छापूर्वक) रागद्वेषमोहरूपी आस्रवभावों का अभाव है, इसलिए.. बुद्धि अर्थात् रुचि। आहाहा! इच्छापूर्वक, रुचिपूर्वक उसे राग-द्वेष नहीं है। उसे राग-द्वेष की रुचि नहीं है। धर्मी को राग-द्वेष की रुचि का अभाव है। बुद्धिपूर्वक और इच्छापूर्वक रागद्वेषमोहरूपी आस्रवभावों का अभाव है, इसलिए वह निरास्रव ही है परन्तु वहाँ इतना विशेष है कि-वह ज्ञानी जब तक ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट भाव से.. आहाहा! ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट भाव से देखे, सर्वोत्कृष्ट भाव से जाने और सर्वोत्कृष्ट भाव से। आचरण करने में अशक्त वर्तता हुआ.. आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ शुद्धनय की बात है। शुभाशुभ बिना जानने की बात है, दर्शन उपयोग की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग नहीं। दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों। समकित है, परन्तु अभी नीचे है न! वह मूल जो परम अवगाढ़ (दशा चाहिए), वह नहीं है। ऐसे समकित बन्ध का कारण तो है ही नहीं, परन्तु यहाँ तो उसका ज्ञान और स्थिरता कम है, इस अपेक्षा से तीनों को कम है, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : तब तक उसे परमावगाढ़ नहीं कहा जाता ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, परमावगाढ़ नहीं । समकित है, परन्तु परमावगाढ़ पूर्ण जो केवली को (योग्य) चाहिए है वह नहीं है । आहाहा ! विशेष कहा जाएगा ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)